कामी, क्रोधी, लालची, इनसे भक्ति न होय

Kami Krodhi Lalachi inse Bhakti na Hoye

भक्ति का स्वरूप : भक्ति ईश्वरीय अवस्था में प्रेम प्रदर्शित करने की वह वत्ति है। जिसके होने पर मानव की काम, क्रोध, मोह, लोभ, ईष्र्या आदि कुत्सित भावनाएँ सदैव के उच्चता । लिए लुप्त हो जाती है। भक्त वत्सल अपनी लोकिकता को त्याग कर ईश्वरीय आस्था में मग्न हो जाता है। ऐसा करने वाला इस विश्व का कोई साधारण व्यक्ति नहीं होता; अपितु कोई माई का लाल ही होता है, जो अपने सर्वस्व की आहुति देने को तत्पर रहता है। ईश्वरीय आस्था के समक्ष विश्व-ऐश्वर्य उसे तुच्छ-सा प्रतीत होता है।

भक्ति भावना की उच्चता : भक्ति एक महान् तप है। इन्द्रियों का दमन उसी के द्वारा हो सकता है। इनके दमन के बिना भक्ति नहीं मिल सकती है। गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में-

"कबहुँ हौं यहि रहिन रहोगे ।

यथा लोभ संतोष सदा, काहु सो कुछ न चाहौंगों ।।"

भवित-पथ में केवल भगवद् भजन की ही प्रबल इच्छा होती है। इस पथ का अनुगामी न कभी क्रोध करता है और न, उसे किसी के प्रति ईष्र्या अथवा द्वेष भावना होती है। उसके लिये कोई अपशब्द कहे। या उसका यशोगान करे, इससे उस हृदय में न तो खीझ उठती है और न ही मोह । वह तो उस आम्रवृक्ष के समान है, जो पत्थर की पीडा को सहन करने के बाद भी प्रतिकार के रूप में आम देता है। उसे न केवल ईश्वरीय दर्शन की लालसा रह जाती है। इसकी पूर्ति हेतु

वह उसी की संगति को हितकर समझता है जो कि भगवान् का भक्त है। भगवान् की भक्ति से द्रोह करने वाले को वह सर्प की केंचुली के समान त्याग देता है। भक्त की प्रकृति का उल्लेख गोस्वामी तुलसीदास के इन शब्दों द्वारा हो जाता है-

जाके प्रिय न राम वैदेही ।

तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही ।।"

भक्त विश्व एवं परिवार के सम्बन्धों को राम के नाते ही मानता है। इनमें से कोई भी यदि भक्ति-पथ का विरोध करता है, तो वह उसे तिनके के समान छोड़ देता है। आज के वैभवशाली युग में सामाजिक बन्धनों को त्यागना कोई खाला जी का घर नहीं । जल में रहकर मगर से बैर कैसे किया जा सकता है। इस पथ पर चलना खाँडे की धार पर चलना है अर्थात् यह वह पथ है जो काँटों से भरा पड़ा है, फूलों का नाम नहीं । असली भक्त भगवान् की आस्था के लिए लोकापवाद, राजदण्ड, मृत्यु को सहर्ष अंगीकार करता है; पर उसमें किसी प्रकार का विघ्न नहीं पडने देता। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है मीरा। उन्हें विष दिया गया. साँप का पिटारा दिया गया, जग हँसाई हुई, इस पर उनके शब्द सुनिये-

"कोऊ कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ,

कोऊ कहौं रंकनी, कलंकनी कुमारी हौं,

तन जाउ, मन जाउ देव गुरु जन जाउ,

प्राण किन जाउ, टैक टरत न टारौ हौं ।"

भक्ति में आडम्बर: एक समय वह आया जब भक्ति के मिथ्याडम्बर ने जोर पकड़ा। लोग सांसारिक कर्मों को छोड़कर इस ओर झुके। भगवे वस्त्र धारण किए गए। मठ आवास के लिये चुने गए। मंदिरों के घंटों की गति में तीवता आ गई। उनके स्वरों से कानों के पर्दे सुन्न हो गए। भक्त कहलाये ऐसे लोग; किन्तु वे इन्द्रियों का दमन न कर सके। भक्ति की आड़ में, कृष्ण लीला के रूप में, देवालयों में देवदामियों की पायल की झंकार झंकरित होने लगी, मोहन भोग चढ़ने लगा और इस प्रकार साकार भक्ति की उपासना में सांसारिक सुखों का भोग होने लगा। भक्ति की भावना दूषित हो गई, आँखें सौंदर्य का पान करने लगीं और मन कामिनी के अंगों में खोकर रह गया। ऐसे ही विषाक्त वातावरण में दो महान् विभूतियाँ अवतीर्ण हुईं तुलसी और कबीर के रूप में। इन्होंने भक्ति के इस रूप को घिनौना बताया और उसका खंडन करते हुए उसके वास्तविक रूप को समाज के सम्मुख रख तुलसी ने इन शब्दों द्वारा उन पाखण्डी भक्तों की अच्छी खबर ली –

"नारी मुई घर संपद नासी, मूड मुड़ाये भये संन्यासी ।"

ईश्वरीय आस्था में तन अर्पित करना बड़ा ही दुष्कर कर्म है। योगी और मुनि अभ्यास द्वारा अपनी इन्द्रियों को लौकिक पदार्थों से दूर करता है; पर भक्त भगवान् के ध्यान में लौकिक पदार्थों से सम्बन्ध तोडता है। इनसे विरक्त होने पर ही सात्विक भक्ति का द्वार खुलता है। इस प्रकार योग मार्ग का लक्ष्य ही भक्ति मार्ग का प्रथम चरण है। कवि के शब्द अक्षरशः सत्य हैं.

“कामी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति न होय ।

भक्ति करे कोई सूरमा, जाति वरन कुल खोय ।।”

भक्ति में समानता : भक्ति का महान् उद्देश्य होना चाहिए सबकी समानता, यदि भक्ति मार्ग में भी समता का व्यवहार न हो पाया, तो और कहाँ हो सकता है ? अत: भक्ति की उच्च ताप ही है कि वह व्यक्ति को परोपकारी, त्यागी, सहिष्णु और सरल बना देती है।